P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-6* ISSUE-3* June- 2021
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

अद्वैत वेदान्त में ब्रह्मभाव

Brahmabhava in Advaita Vedanta

Paper Submission: 01/06/2021, Date of Acceptance: 15/06/2021, Date of Publication: 25/06/2021

राजेश्वर सिंह
सह आचार्य,
दर्शनशास्त्र विभाग,
बी0आर0ए0 बिहार
विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

सारांश

अद्वैत वेदान्त को अत्यन्त अल्प शब्दों में संक्षेपिकृत किया जा सकता है– 'एक मात्र ब्रह्म की सत्ता है, जगत् पूर्णतया असत् है और जीव ब्रह्म से पृथक् नहीं है।' वस्तुतः अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म एवं आत्मा पर्यायवाची शब्द हैं। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। मोक्ष ब्रह्मभाव या ब्रह्मसाक्षात्कार है। शास्त्र ब्रह्मज्ञान का केवल ज्ञापक है, कारक नहीं। यह अपरोक्ष अनुभव है।

Advaita Vedanta may be summarized in half a verse which runs as follows - Brahman is the only reality; the world is ultimately false, and the individual soul is non-different from Brahman. Actually, Brahman and Atman are synonymous terms in Advaita Vedanta. He who knows Brahman becomes Brahman. Moksha is Brahmbhava or Brahma-realization. Shastra only generates right knowledge (Jnapakan). It does nothing else (na karakam). It is immediate experience.

मुख्य शब्द : ब्रह्म, आत्मा, सत्, साक्षात्कार, मोक्ष, अविद्या, अद्वैत दर्शन, अपरोक्षानुभूति।

Brahman, Soul, Realization, Liberation, Ignorance, Non-Dualistic Philosophy, Immediate Experience.

प्रस्तावना

ब्रह्म सूत्र शांकरभाष्य में आचार्य शंकर ने यह प्रतिपादित किया है कि जो ब्रह्म को जानता है वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। ब्रह्म ज्ञान तथा ब्रह्मभाव एक ही है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य है– 'अविद्यानिवृत्ति तथा ब्रह्मभाव' को एक सिद्ध करना।

विषय विस्तार

अद्वैत–वेदान्त की दार्शनिक चिन्तन परम्परा हमारे आर्ष–ऋषियों के नवनवोन्मेषशालिनी पावन प्रज्ञा की प्रखर ज्ञान–रश्मियों से अद्यावत् प्रकाशित एवं पल्लवित होती रही है। यह जीवन एवं जगत् के दिव्य रहस्यों को उद्घाटित करने की परम्परा है; 'कोऽहं' से सोऽहं तक की अद्वैती–यात्रा है। वर्तमान समय में यह परम्परा जीवन के द्वन्द्वों में उलझे हुए व्यक्तियों को असत् से सत् की ओर प्रयाण करने की प्रेरणा, अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर होने का उत्साह एवं विनाश से विकास की ओर उन्मेषित करने वाली संजीवनी प्रदान कर रही है।

अद्वैतवेदान्त में ब्रह्मसाक्षात्कार, अविद्या–निवृत्ति, प्रपंचोपशम और मोक्ष प्राप्ति, ये सब एक हैं। ये एक साथ होते हैं, वस्तुतः यह कथन भी उपचारमात्र है क्योंकि यहाँ कोई 'होना' या क्रिया नहीं है। शारीरक भाष्य[1] में आचार्य शंकर ने ब्रह्मभाव के विषय में कहा है कि अविद्या–निवृत्ति (अविद्यानिवृत्तिरेव मोक्षः) एवं ब्रह्मभाव (ब्रह्मभावश्च मोक्षः) या मोक्ष में कार्यान्तर नहीं है। आत्म–ज्ञान मोक्ष को फल या कार्य के रूप में उत्पन्न नहीं करता। मोक्ष–प्रतिबन्धरूप अविद्या की निवृत्ति मात्र ही आत्म–ज्ञान का फल है।[2] ज्ञान वस्तुतन्त्र (ज्ञानं तु वस्तु तन्त्रम्) और प्रकाशन या ज्ञापक होता है; कारक नहीं, क्योंकि ज्ञान क्रिया नहीं है। अतः ज्ञान का फल अज्ञान की निवृत्ति मात्र है जो ज्ञान के प्रकाश से स्वतः हो जाती है, जैसे प्रकाश से अन्धकार की निवृत्ति होती है। मोक्ष नित्य सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा या ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति है। मोक्ष या ब्रह्म हेय और उपादेयरहित है; मोक्ष में न कुछ खोना है न पाना है।[3] यह ब्रह्मभाव है, जो सदा प्राप्त है (प्राप्तस्य प्राप्ति)। इसके अतिरिक्त आचार्य शंकर ने मोक्ष को 'नित्य अशरीरत्व' भी कहा है जिसका अर्थ है– शरीर–सम्बन्ध–रहित। इसका अत्यन्त मनोरम वर्णन करते हुए कहा है कि–

''इदं तु पारमार्थिकं, कूटस्थनित्यं, व्योमवत् सर्वव्यापि, सर्वविक्रियारहितं, नित्यतृप्तं, निरवयवं, स्वयंज्योतिः स्वभावम्, यत्र धर्माधर्मौ सह कार्येण कालत्रयं च, नोपावर्तते, तदेतत् अशरीरत्वं मोक्षाख्यम्''[4]

अब प्रश्न उठता है कि मोक्षप्रतिबन्धभूत अविद्या की निवृत्ति के उपाय क्या हैं? विवेक–चूड़ामणि में आचार्य शंकर का कहना है कि–

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा।।[5]

अर्थात् मोक्ष न योग से सिद्ध होता है, न सांख्य से, न कर्म से और न विद्या से। वह केवल ब्रह्मात्मैक्य–बोध से ही है और किसी प्रकार नहीं।

न गच्छति विना पानं व्याधिरोषधशब्दतः।
विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दर्न मुच्यते।।[6]

अर्थात् औषध को विना पिये केवल औषध–शब्द के उच्चारण मात्र से रोग नहीं जाता, इसी प्रकार अपरोक्षानुभव के बिना केवल ''ब्रह्म, ब्रह्म'' कहने से कोई मुक्त नहीं हो जाता– **''बाह्यशब्दैः कुतो मुक्तिः''**[7]

वस्तुतः आचार्य शंकर के लिए मोक्ष का साधन केवल ज्ञान है ''ऋते ज्ञानानि मुक्तिः'' जो मोक्षप्रतिबन्धभूत अविद्या को दूर करता है, कर्म और उपासना चित्त को शुद्ध और एकाग्र बनाने के साधन हैं जिससे शुद्ध और एकाग्र चित्त ज्ञान की ज्योति को ग्रहण कर सके। ''श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'– श्रद्धा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। श्रद्धा से ही चित्त शान्त एवं निर्मल बनता है–

''प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च
प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।
गुणान्वितायानुगताय सर्वदा।
प्रदेयमेतत्सततं मुमुक्षवे।।''[8]

श्रद्धा आत्म–जिज्ञासु के प्रयत्न की सफलता का मेरूदण्ड है। यदि आत्मजिज्ञासु को गुरू और मोक्ष–शास्त्र में प्रमाण्यबुद्धि न हो तो वह गुरूपदेश को शतशः सुनने, पर तथा शास्त्रों का असकृत अध्ययन करने पर भी उनके अर्थ के सम्बन्ध में संशयालु बना रहेगा। फलतः गुरू और शास्त्र के बनाये मार्ग पर न चलकर इतस्ततः भटकता रहेगा और अन्ततः उसके हाथ कुछ न लगेगा। अतः आत्मज्ञान के पथिक के लिए श्रद्धा का सम्बल आवश्यक है।

आचार्य शंकर भी तत्त्व की प्राप्ति में श्रद्धा को सहायक मानते हैं–

शास्त्रस्य गुरूवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते।।[9]

पुनः उनका कहना है कि मुक्ति की कारण रूप सामग्री में भक्ति ही सबसे बढ़कर है और अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसन्धान करना ही भक्ति है–

''मोक्षकारणसामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।।''[10]

इस प्रकार श्रद्धा से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति आचार्य शंकर के दर्शन में मोक्षप्रतिबन्धभूत अविद्या की निवृत्ति का प्रबल प्रमाण है। श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग इनको भगवती श्रुति मुमुक्षु की मुक्ति के साक्षात् हेतु बताती है। जो इसी में स्थित हो जाता है उसका अविद्या कल्पित देह–बन्धन से मोक्ष हो जाता है।[11] श्रुतिवाक्य ऋषियों के ब्रह्मविषयक स्वानुभव की शाब्दिक अभिव्यक्ति है, अतः श्रुति को शब्द–ब्रह्म भी कहते हैं। यहाँ बुद्धि अपनी सीमा को जान लेती है और तत्त्व को अतीन्द्रिय, बुद्धिविकल्पातीत तथा अनिर्वचनीय जानकर उसे अद्वैत अपरोक्षानुभूतिगम्य मानती है। अतः ब्रह्म प्रतिपादक श्रुतिवाक्यों को कुतर्क द्वारा मृषा नहीं किया जा सकता– **''श्रुतेर्वचनं न कुतर्कबुद्धया मृषा कर्तुं युक्तम्।''**[12] किन्तु जो व्यक्ति वेद रट लेता है और उसका अर्थ नहीं जानता, वह केवल एक कुली के समान वेद का बोझा अपने सिर पर लादे फिरता है– **''स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।''**[13] आचार्य शंकर का कहना है कि व्यवहार में सुतर्क प्रतिष्ठित है तथा परमार्थ में श्रुति। श्रुति की अपेक्षा युक्ति व्यवहार के अधिक निकट होती है। यदि सैकड़ों श्रुतियाँ भी अग्नि को शीतल और अप्रकाश बतायें तो भी अनुभव विरूद्ध होने के कारण उन्हें प्रमाण नहीं माना जा सकता– **''न हि श्रुतिशतमपि शीतोऽग्निरप्रकाशो वेति ब्रुवत् प्रामाण्यमुपैति।''**[14] तर्क या बुद्धि का साम्राज्य व्यवहार तक ही सीमित है, परमार्थ में उसकी गति नहीं है। बुद्धि अपनी सीमा का ज्ञान करके अपरोक्षानुभूति की ओर संकेत करती है जो ज्ञातृ–ज्ञेय–भेद– रहित विशुद्ध चैतन्य है। यह बुद्धि के अधिष्ठानभूत आत्मा का स्वरूप है जो स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश है। यह अद्वैता अनुभूति ही ब्रह्म, आत्मा या मोक्ष है। ब्रह्मज्ञान का अवसान इसी स्वानुभव में होता है।

अब प्रश्न उठता है कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा तो असंग और अविषय है, तब वह 'अहं' प्रत्यय का विषय कैसे हो सकता है? और जब आत्मा विषय के रूप में अवस्थित नहीं होता तब उस पर अनात्मधर्मों का अध्यास कैसे सम्भव है? आचार्य शंकर का कहना है कि वस्तुतः आत्मचैतन्य असंग और अविषय ही है। स्वप्रकाश साक्षिचैतन्य[15] ही अविद्या के कारण जीव या प्रमाता के रूप में भासित होता है और 'अहं' प्रत्यय का विषय यही जीव या प्रमाता है। इसी अविद्यावान् जीव या प्रमाता को विषय और आश्रय बनाकर प्रमातृप्रमाणप्रमेय आदि समस्त लोकव्यवहार एवं विधि, निषेध और मोक्षपरक समस्त शास्त्र प्रवृत्त होते हैं।[16]

इस अविद्या के कारण जीव अपने आत्म स्वरूप को भूलकर अनात्मपदार्थों और अनात्मधर्मों को अपने ऊपर आरोपित कर लेता है और नाना प्रकार के दुःखों का भोग करता है। बुद्ध की भी मान्यता है कि **''सब्बे संखारा अनिच्चा, यदनिश्चं तं दुक्खं, यं दुक्खं तदनत्ता, यदनत्ता तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मे सो अता ति।''**[17]

सांख्य का भी कहना है कि 'जो अनात्म है वह मैं नहीं हूँ, वह मेरा नहीं है, मैं जड़ पदार्थ नहीं हूँ' इस भावना के अभ्यास से शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है–

''एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।।''[18]

यह अनादि, अनन्त, नैसर्गिक तथा मिथ्याज्ञानरूप अध्यास सारे अनर्थों का मूल कारण है। इसे नष्ट करने के लिए और अद्वैत आत्मतत्त्व का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करने के प्रयोजन के लिये सारे बेदान्तशास्त्र प्रारम्भ होते हैं।[19]

अब प्रश्न उठता है कि अविद्या की निवृत्ति, उसका नाश या निषेध कैसे सम्भव है? आचार्य शंकर का स्पष्ट मत है कि अबाध्य होने के कारण सत्–ब्रह्म का निषेध नहीं हो सकता है और प्रतीत न होने के कारण असत्–खपुष्प के निषेध का भी कोई अर्थ नहीं है। हमारा सारा बुद्धिविकल्पजन्य लौकिक ज्ञान 'अनिर्वचनीय' और 'मिथ्या' पदार्थों तक ही सीमित है। अतः अध्यस्त पदार्थ का ही निषेध सम्भव है। अध्यस्त का निषेध उसके अधिकरण (अधिष्ठान) से अभिन्न है, अतः अध्यस्त के निषेध से अधिष्ठान की सत्ता का बोध होता है। रज्जु–सर्प के निषेध से रज्जु की सत्ता का और प्रपंच के निषेध से ब्रह्म की सत्ता का बोध होता है। अध्यस्त के समान उसका निषेध भी अविद्याजन्य है, अतः अन्ततः इस निषेध का भी निषेध हो जाता है।

इस प्रसंग में पूर्वपक्ष के रूप में प्रतिपक्षी के आक्षेपों को उठाते हुए आचार्य शंकर ने कहा कि यदि प्रतिपक्षी यह कहे कि अनृत मोक्षशास्त्र द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मात्म्यैक्य किस प्रकार सत्य हो सकता है? असत्य वेदान्त वाक्यों द्वारा ब्रह्मात्मतारूपी सत्य मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव हो सकती है?[20] क्या असत् जीव असत् जगत् में असत् साधनों द्वारा असत् मोक्ष प्राप्त करने का असत् प्रयत्न कर रहे हैं, जो स्वयं असत् है। आचार्य शंकर का उत्तर है कि ''नहि रज्जुसर्वेण दष्टो म्रियते। नापि मृगतृष्णिकाम्भसा पानावगाहनादिप्रयोजनं क्रियते।''[21]

वस्तुतः प्रतिपक्षी का आक्षेप शंकराचार्य द्वारा किये गये विविध सत्ता भेद– प्रतिभास, व्यवहार तथा परमार्थ को न समझने के कारण है। स्वामी विद्यारण्य पंचदशी में कहते हैं कि–

''तुच्छाऽनिर्वचनीया च वास्तवी चेत्यसौत्रिधा।
ज्ञेया माया त्रिर्भिर्बोधैः श्रौतयौक्तिक लौकिकैः।।[22]

अर्थात् श्रुति, युक्ति एवं लौकिक की दृष्टि से माया को क्रमशः तुच्छ या मिथ्या, अनिर्वचनीय एवं वास्तव माना जाता है।

वस्तुतः अविद्या निवृत्ति, ब्रह्म–ज्ञान या ब्रह्म–भाव एक ही है। जीव ब्रह्म 'बनता' या 'होता' नहीं। उसमें क्रिया की गन्धमात्र भी नहीं है। बन्धन और मोक्ष दोनों अविद्याजन्य हैं। अविद्या के कारण जीव देहेन्द्रियान्तःकरणादि से तादात्म्य कर लेता है और अहंकार–ममकार युक्त होकर स्वयं को शुभाशुभ कर्मों का कर्ता, सुख–दुःख का भोक्ता मानकर जन्ममरण–चक्र में संसरण करता है। जब आत्मज्ञान द्वारा अविद्या–निवृत्त होती है तो जीव नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। यह 'प्राप्तस्य प्राप्तिः' है।

आचार्य माठर ने अपने वृत्ति में कहा है कि अविवेक के कारण ही सर्वव्यापक सर्वेश्वर आत्मा को देहादि से परिच्छिन्न समझा जाता है–

अहंकारो धियं ब्रूते मनं सुप्तं प्रबोधय।
प्रबुद्धे परमानन्दे न त्वं नाहं न तज्जगत्।।
मयि तष्ठत्यहंकारे पुरुषः पंचविंशकः।
तत्ववृन्दं परित्यज्य स कथं मोक्षमिच्छति।।
योऽसौ सर्वेश्वरो देवः सर्वव्यापी जगद्गुरू।
देहीति पद्वभुच्चार्य हा मयात्मा लघुः कृतः।।''[23]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः ब्रह्मात्म्यैक्य के त्रिकालसिद्ध और नित्य होने के कारण जीव का न तो बन्धन होता है और न मोक्ष। केवल अविद्या ही आती है और अविद्या ही जाती है। चूंकि अविद्या भ्रान्ति है, अतः उसका आवागमन उसकी प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों भ्रान्ति रूप है।[24] आत्मा नित्य मुक्त है। उसी का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है– **'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' (कठो0उप0)**। उस स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश विज्ञाता के विज्ञान क या द्रष्टा की दृष्टि का लोप कभी नहीं हो सकता है – **''नहि द्रष्टुर्दृष्टे विपरिलोपो विद्यते'' (वृह0 उप04/3/23,31)** नित्य और स्वप्रकाश आत्मा की ज्योति कभी लुप्त नहीं हो सकती।[25] आत्मसाक्षात्कार में द्रष्टा और उसके द्वारा देखा जाने वाला विषय नहीं है क्योंकि आत्मा के विषय बनाया ही नहीं जा सकता। वह तो शुद्ध विषयी है। याज्ञवल्क्य का उद्घोष है– **''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात? विज्ञातारम् अरे! केन विजानीयात्'' (वृह0)** द्रष्टा का दर्शन, विज्ञाता का विज्ञान असम्भव है क्योंकि जिसके द्वारा यह सब दृश्य–प्रपंच जाना जाता है उस विज्ञाता को विज्ञेय या विषय के रूप में कैसे जाना जा सकता है।

''जिमि ऑखिन सब देखियत आँख न देखी जाँहि।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शारीरक भाष्य– 1–1–4*
2. *मोक्षप्रतिबन्धनिवृत्तिमात्रमेव आत्मज्ञानस्य फलम्। वही।*
3. *हेयोपादेयशून्यब्रह्मात्मतावगमात्। वही।*
4. *वही*
5. *विवेक–चूड़ामणि, आचार्य शंकर, गीताप्रेस, गोरखपुर, 58*
6. *वही, 64*
7. *वही, 65*
8. *वेदान्तसार– श्रीसदानन्दप्रणीतः, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ0 69*
9. *विवेक–चूड़ामणि, आचार्य शंकर, गीताप्रेस, गोरखपुर, 26*
10. *वही, 32*
11. *श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षो*
    र्मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छुतेर्गीः।
    यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य
    मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात्।।
    वही, 48
12. *छान्दोग्यभाष्य– आचार्य शंकर, 3–12–1*
13. *भारतीय दर्शनः आलोचना और अनुशीलन– सी.डी. शर्मा द्वारा यास्क मुनि के कथन का उल्लेख पृ0 279, द्रष्टव्य विवेक–चूड़ामणि–47,60, 'बाह्य शब्दैः कुतोमुक्तिः' 65*
14. *शांकर गीताभाष्य– 18/66*
15. *साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च – श्वेता0 उप*
    द्वा सपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
    तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वति अनश्वन्नन्योऽभिचाकशीति।।
    – मुण्डक उप0 3/1/1

16. *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, उपोद्धात।*
17. *संयुत्त निकाय, 22,15*
18. *सांख्यकारिका, 64*
19. *अस्मानर्थहेतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य उपोद्धात।*
20. *कथं चानृतेन मोक्षशास्त्रेण प्रतिपादितस्य आत्मैकत्वस्य सत्यत्वमुपपद्येत?.....कथं त्वसत्येन वेदान्तवाक्येन सत्यस्य ब्रह्मात्मत्वस्य प्रतिपत्तिरूपपद्येत्?*
    – शारीरक भाष्य 2,1,14
21. *शारीरक भाष्य 2,1,14*
22. *पंचदशी– 6/130*
23. *सांख्यकारिका माठरवृत्ति, आचार्य माठर, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, पृ0 140*
24. *ईश्वरकृष्ण ने भी प्रकृति के विषय में यही कहा है–*
    तस्मान्न बध्यते नापि मुच्यत नापि संसरति कश्चित्।
    संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः।।
    – सां. का. 62
25. *शारीरक भाष्य– 2/3/7*